विभिषिका

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

कलकल बहती भगवती गंगा के किनारे वनौषधि परिचय यात्रा पूरी कर आश्रमवासियों को अभी अधिक समय नहीं हुआ था। आचार्य पुनर्वसु आत्रेय, गुरुकुल के शिष्यों के साथ थोड़ी देर पहले ही लौटे थे। प्रतिदिन की भाँति आज भी यह पंचनदपुर की राजधानी काम्पिल्य का गुरुकुल आयुर्वेदीय शिक्षा की सौरभ से सुवासित हो रहा था। कोई विद्यार्थी गुरुवर द्वारा उपदिष्ट पाठ का पारायण कर रहा था, कोई उस पाठ के निगूढ अर्थ में डूब रहा था तो कोई आज अन्वेषित वनौषधि से भावात्मक परिचय स्थापित करने की चेष्टा में संलग्न था। सहसा गुरुवर्य ने अपने पटु शिष्य अग्निवेश को आवाज लगाई। आवाज सुनते ही अग्निवेश आचार्य प्रवर के सम्मुख विनीत भाव से उपस्थित हो गया। आचार्य का गंभीर स्वर गूंजा– 'तुम अपने सभी सहपाठियों को साथ लेकर यहाँ आओ। एक महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करनी है।

मैं अभी आया महाराज, कहते हुये अग्निवेश ने छात्रावास में जाकर सभी को गुरुवर के आदेश से अवगत करा दिया। सुनते ही शिष्य समुदास आकर अपने प्राचार्य के सम्मुख सदा की भाँति आसीन हो ागया। शान्त वातावरण में गुरुवर की गुरुतर स्वरलहरी झंकृत होने लगी–

'प्यारे शिष्यो! इस समय अंशुमान सूर्य की किरणें सौम्य होनी चाहिये किन्तु दिन में ये अत्यधिक प्रखर होती जा रही है। रात्रि में शीत का आभास इस समय स्वल्प होता जा रहा है जबकि यह बढना चाहिये। चन्द्रमा के प्रकाश में भी उज्ज्वलता का ह्रास दिखाई देता है। वायु का प्रवाह भी विपरीत होता जा रहा है। दिशायें किसी विभिषिका से आशंकित सी जान पड़ती है। ये सब प्रकृति एवं समय के प्रतिकूल भाव किसी अमंगल की सूचना दे रहे हैं। मुझे आशंका है कि देश पर ही नहीं विश्व पर किसी रोग विशेष की विभिषिका छोन वाली है।

शिष्य अग्निवेश ने देखा कि आचार्यश्री ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और सभी शिष्य एक कातर दृष्टि से चारों ओर निहारने लगे। व्याप्त मौन को तोड़ते हुये अग्निवेश ने निवेदन किया– 'ऐसे समय हमारा क्या दायित्व है? आप आदेश करें कि हमें क्या करना चाहिये, जिससे यह संकट कुछ न्यून हो और जनता इसका सामना करने में समर्थ हो सके।'

'वस्तुतः ऐसे समय में शिक्षकों का, चिकित्सकों का, समाज सेवकों का, सद्चिन्तकों का और सर्वकारों का दायित्व अधिक बढ जाता है। इन सबके सामुहिक प्रयासों से ही इस संकट का सामना किया जा सकता है।' इतना कह कर आर्त जनता को दिलाने वाले महर्षि ने अपने प्रिय शिष्यों पर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालते हुए कुछ क्षण विराहम लिया। तत्पश्चात् वे पुनः बोलने को उद्यत हुये–

'तुम में से कुछ आवश्यक वनौषधियाँ प्राप्त करने जाओ, इनकी अब बहुत आवश्यकता पडेगी। जब यहाँ महामारी फैल जायेगी तब ये कुछ प्रभावहीन हो सकती है। तुम में बहुत से छात्र इधर उधर नगर ग्रामों में जाकर लोगों कोा सावधान कर दो कि वे खान-पान में, रहन-सहन में पूर्णतया सतर्क हो जाय। अपनी दिनचर्या संयमित और नियमित रखें। पौष्टिक तथा सात्त्विक आहार ही सेवन करें। ऐसा खाद्यान्न कुछ संग्रहीत नहीं हो तो संग्रहीत कर लें। पशुओं के चारे के लिये चारे का भी पूर्ण प्रबन्ध कर लें। प्रवाह पर गये व्यक्तियों को शीघ्र बुलवालें, क्योंकि फिर उनका आना-जाना कठिन हो जायेगा। यह भी समझाया जाय कि किसी का मनोबल न्यून न होने पाये, क्योंकि मन की व्याकुलता रोगों को शीघ्र बुलाती है। संकटों से घबराना मनुष्य को शोभा नहीं देता।'

मानवोचित साहस का सन्देश देते हुये आचार्य आत्रेय ने आगे कहा कि– 'वैसे तो जीवनशुद्धि की सदैव आवश्यकता है, किन्तु ऐसे समय इसकी आवश्यकता बढ जाती है। आहार-विहार शुद्धि तथा स्थान शुद्धि के साथ ही शारीर शुद्धि-मानस शुद्धि का महत्त्व होता है। लोगों को जागृत करो कि वे शरीर के शोधन का उपाय करें। किसी समीप के चिकित्सालय में जाकर किसी सुयोग्य चिकित्सक की देखरेख में स्नेहन-स्वेदन, विरेचन-बस्ति के प्रयोगों से शरीर की शुद्धि कर लें। शुद्ध हुये शरीर में रोगों के संक्रमण का खतरा नहीं रहता। शरीर की सम्यक् शुद्धि के पश्चात् रसायन द्रव्यों का सेवन करना चाहिये। रागों के कारणों की बलवत्ता तथा हीन रोग प्रतिरोध क्षमता से ही महामारी आक्रमण विशेष करती है। शरीर की रोग प्रतिरोधकक्षमता की प्रबलता के कारण रोगों का आक्रमण सहज में ही नहीं होता अथवा क्वचित् होता है तो वह सौम्यस्वरूप का होता है। रसायनों के रूप में हरीतकी, आमलक, गिलोय, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पिप्पली, शतावरी, बला (खरेंटी), शिलाजीत आदि का सेवन चिकित्सक के परामर्श के अनुसार करना चाहिये। इस समय सिद्ध योगों के रूप में बालकों को च्यवनप्राश, युवकों को शिलाजीत और च्यवनप्राश तथा वृद्धों को ब्राह्म रसायन सेवन करना हितकारक है। कब, कितना और किस अनुपान के साथ लेना है– यह सब चिकित्सक ही बतायेगा।'

जूही, चम्पा और केतकी के पुष्पों की सौरभ आश्रम को सुरभित बनाये हुये थी, कोकिल-कीर-चरकादि का खगरव स्पष्ट सुनाई दे रहा था इसी बीच आचार्य आगे कहने लगे– 'एक बात जो मैं बार-बार कहता रहा हूँ, आज पुनः दुहराना चाहता हूं कि आयुर्वेदीय औषध कल्प रोगाणु-विषाणु को तो नष्ट करते ही है साथ में इनसे उत्पन्न सेन्द्रिय विष को भी ये बाहर निकाल देते हैं, जबकि अन्य उपाय इस सेन्द्रिय विष को नहीं निकाल पाते हैं। इस अवस्थित सेन्द्रिय विष` कारण ही रोगों का पुनः पुनः प्रादुर्भाव होता है। महामारी की विभिषिका में ये औषधकल्प अधिक कार्यकारी सिद्ध होते हैं। यदि कोई व्यक्ति पहले से ही किसी सामान्य-विशेष रोग से ग्रसित हो तो उन रोगों को दूर करने हेतु चिकित्सक

के निर्देशानुसार उपचार जारी रखा जाय। इनमें भी वृद्ध, बालक और गर्भवती महिलाओं की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय।'

'ऐसे समय हमारी जो हवन-प्रक्रिया है, वह विशेष प्रभावी सिद्ध होती है। हवन-होम भारतीय संस्कृति का जनक है। लोकमंगल के लिये, जन जागरण के लिये और वातावरण को परिशुद्ध बनाने के लिये हमने तो इसे दैनिक-प्रक्रिया में सम्मिलित कर ही रखा है, अब यह घर-घर में होना चाहिये। आसुरी संक्रमण को रोकने के लिये यज्ञ-होम आवश्यक है। वेदों में इन्हीं की महिमा गायी गई हे। यजुर्वेद तो यजन करने का ही वेद है। द्धग्वेद के मन्त्र यहाँ काम आते हैं, साममन्त्रों का इनमें गायन होता है और इनमें अथर्ववेद-विहित प्रयोग भी होते हैं। वातावरण को शुद्ध बनाने व्याप्त विकृतियों को दूर करने तथा इसे स्वास्थ्यप्रद बनाने हेतु हवन का वैज्ञानिक महत्व है। जो इनमें द्रव्य प्रयुक्त किये जाते हैं वे इन उद्देश्यों को पूर्ण करने में भलीप्रकार से सहायक सिद्ध होते हैं। हवन में समिधा के रूप में आम, पीपल, वट, गूलर, पलाश, खदिर, शमी आदि की लकड़ी उपयोग में लाई जानी चाहिये। हव्य (आहुति हेतु उपयोगी द्रव्य) हेतु धान्यों में जौ, चावल, तिल लिये जाते हैं। सफेद तिल देवताओं हेतु होते हैं और काले तिल पितरों हेतु उपयोग में लाये जाते हैं। मिष्ट द्रव्यों में शक्कर, छुहारा, किशमिश आदि पुष्टि हेतु घृत, गूगल, नारियल आदि का सुगन्ध हेतु तगर, केशर, चन्दन, एला, जायफल, जावित्री, कपूर काचरी आदि उपयोग में लाये जाते हैं।

हवन में रोगनाशक वनौषधियों का विशेष महत्व है। इनमें गिलोय, तुलसी, नीम (छाल, पत्र एवं पुष्प), तेजपत्र, जटामांसी, सफेदचन्दन, इन्द्र जौ, ब्राह्मी, आँवला, दालचीनी तालीस पत्र, नागरमोथा, लालचन्दन, देवदारु, वासा, मंजीठ और कुटकी आदि विशेष उपयोगी हैं। इनमें जो भी उपलब्ध हो जाये उन्हें उपयोग में लाना चाहिये।'

'हे अग्निवेश! तुम सभी इन बातों से जन-जन को अवगत कराओ। आज इस विभिषिका की वेला में हमारा यही पावन कर्त्तव्य है।'

'हम आपके आदेश की पालना में शीघ्र ही संलग्न हो रहे हैं किन्तु हमें आप यह तो बताइये कि प्रत्येक मनुष्य की पृथक्-पृथक् प्रकृति होती हे। उनके वय, सत्त्व, सात्म्य सभी में प्रायः एकरूपता नहीं होती, रि वे एक साथ इस विभिषिका से कैसे आक्रान्त हो जाते हैं?' अग्निवेश का अपने गुरुवर से यह प्रश्न था।

गुरुवर ने एक गहरा श्वास लिया और वे उत्तर देने लगे– 'सबकी प्रकृति, वय, सत्त्व, सात्म्य आदि विशेष होने पर भी वासु, जल, देश और काल तो सामान्य होते हैं। जो वायु जीवनदायिनी थी वह अब विनाशकारी होने लगी है। मानवीय कुकृत्यों से यह वायु विकृत हो गई है। जल भी विकृत गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श वाला होता जा रहा है। देश में धर्म का पराभव हो रहा है, सत्य समाप्त हो रहा है और सदाचार सुप्त होता जा रहा है। ऋतु के विपरीत स्वभाव वाला काल लोगों को अकाल

में ही काल कवलित करने हेतु लालायित हो रहा है। सात्त्विक आहार, शुद्ध विचार, विशुद्ध विहार और विश्वाससंयुत ईश्वराराधन के स्थान पर तामसी आहार, स्वार्थ परायणता, लोलुपता तथा अहमन्यता का विस्तार होने लगता है तब विध्वंस की काली घटायें छाने लगती हैं। जहाँ सद्विचारों की पुण्यसलिला अधम आचारों के मरु+स्थल में सुखा दी जाती है और निर्मम निर्दयता के पूर्ण प्रहारों से मानवता को चोट पहुँचायी जाती है वहाँ वत्स! ऐसी ही महामारी अपना तांडव नहीं रचायेगी तो क्या होगा? इन सब विकृतियों का मूल हेतु अधर्म ही है। धर्मेण गमनमूर्ध्वम्, गमनमधस्तात् भवत्यधर्मेण के अनुसार धर्म से ही उन्नति और अधर्म से ही सर्वविध अवनति होती है। अधर्म की प्रधानता से ही प्रज्ञापराध पनपता है और जहाँ प्रज्ञापराध पनपता है वहाँ असाधु असाधु ही होता है। संसार के इन समस्त संक्रामक कारणों का कारण यह प्रज्ञापराध ही है। अयथार्थ ज्ञान से प्रेरित होकर कर्म करना ही प्रज्ञापराध है।'

ऋतुओं के स्वाभाविक शीत आदिगुणों में वैपरीत्य आना ही आयुर्वेद में 'परिणाम' के नाम से जाना जाता है, इसे ही काल कहा जाता है– 'कालः पुनः परिणाम उच्यते।' यह अधर्म ही कालान्तर में परिणत होकर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। अतः रोगों का हेतु प्रज्ञापराध हो अथवा परिणाम– इन सबका मूल कारण यह अधर्म ही होता है।'

आचार्य के मुखमण्डल पर एक उदासी परिलक्षित होने लगी और वे कुछ क्षण रुककर पुनः समझाने लगे– 'इन अधर्ममूलक अभिशापों से ही नाना प्रकार के भूत-प्रेत (जीवाणु-विषाणु) के समूह प्राणियों को आघात पहुँचाते हैं। इससे सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। मृत्यु पर मृत्यु होने लगती है। बहुत से प्रयासों के बाद भी यह रुकन का नाम नहीं लेती। असहाय मानव संक्रमण के भय से अपनों से भी दूर रहना चाहता है। वह अपने घर की चारदिवारी में सिमट कर आहें भरने लगता है। शिष्य! इस महामारी से सभी मनुष्य प्रभावित होते हैं। हाँ, जिनका सत्त्व प्रबल है, जिनका मनोबल बढा हुआ है, जिनकी रोगक्षमता बलवती है, जो धर्मपरायण हैं, जो परोपकार में मन लगाये हुये हैं और जो आस्तिक विचारधारा को धारण किये हुये हैं वे इस जनपदोध्वंस (महामारी) से कम प्रभावित हैं। ईश्वरकृपा से वे बचे भी रहते हैं। मैंने तुमको एक पाठ पढ़ाया था, उसके पालन की आवश्यकता पहले भी थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। मेरे इस सन्देश को आज घर-घर में पहुँचाने की आवश्यकता है। यह सन्देश मेरा ही नहीं अपितु सभी विद्वानों की ओर से जन-जन के प्रति है–

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्त्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(जिन कर्मों का अशुभ फल, कल हो या फिर आज।
वह न करो, हय कह रहा, सज्जन सकल समाज।।)

अध्यक्ष,
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्, जयपुर